आदर्श विद्यार्थी बापू

आदर्श विद्यार्थी बापू

सावित्री देवी वर्मा

प्राकाशन विभाग

सूचना और प्रसारण मंत्रालय

भारत सरकार

पहला	संस्करण	दिसम्बर	1956
दूसरा	संस्करण	फरवरी	1958
तीसरा	संस्करण	नवम्बर	1959
चौथा	संस्करण	जून	1964
पांचवां	संस्करण	अगस्त	1969
छठा	संस्करण	दिसम्बर	1970
सातवां	संस्करण	मार्च	1979
आठवां	संस्करण	फरवरी	1983
नौवां	संस्करण	अप्रैल	1994

ISBN 81-230-0125-8

मूल्य : 14 रूपये

निदेशक प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार
पटियाला हाउस नई दिल्ली - 110001 द्वारा प्रकाशित ।

विक्रय केन्द्र ● प्रकाशन विभाग

- सुपर बाजार (दूसरी मंजिल) कनाट सर्कस नई दिल्ली - 110001
- कामर्स हाउस करीमभाई रोड वालार्ड पायर बम्बई - 400038
- 8, एसप्लेनेड ईस्ट कलकत्ता - 700069
- एल. एल. ए. आडीटोरियम 736 अन्नासलै मद्रास - 600002
- बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग अशोक राजपथ पटना - 800004
- निकट गवर्नमेंट प्रेस प्रेस रोड त्रिवेन्द्रम - 695001
- 10- बी स्टेशन रोड लखनऊ - 226019
- राज्य पुरातत्वीय संग्रहालय बिल्डिंग पब्लिक गार्डन्स हैदराबाद - 500001

आई एम एच प्रेस प्राइवेट लिमिटेड ओखला इंडस्ट्रियल एरिया फेज़ 1 नई दिल्ली द्वारा मुद्रित

बचपन और शिक्षा

गांधीजी का जन्म 2 अक्तूबर, 1869 को पोरबन्दर में हुआ था। इनका असली नाम मोहनदास था। इनके पिता का नाम करमचन्द था। गुजरात में अपने नाम के साथ पिता और घराने का नाम जोड़ने का रिवाज है। इस प्रकार, गांधीजी का पूरा नाम हुआ मोहनदास करमचन्द गांधी। इनकी माता पुतलीबाई और पिता, दोनों ही बड़े धार्मिक थे। गांधीजी के पिता ने किताबी शिक्षा कम पाई थी। पर उन्होंने सत्संग और अनुभव से बहुत कुछ सीख लिया था। वह अपने काम में कुशल और ईमानदार थे। उन्हें रिश्वत से सख्त चिढ़ थी। वह सच्चा न्याय करने के लिए प्रसिद्ध थे। एक बार, जब वह राजकोट में दीवान के पद पर थे, रियासत के अंग्रेज पोलिटिकल एजेंट ने वहां के शासक की शान के खिलाफ कुछ शब्द कह दिए। करमचन्द गांधी को यह बात बहुत बुरी लगी और उन्होंने पोलिटिकल एजेंट का विरोध किया। इस पर साहब उन पर बहुत बिगड़ा। पर वह भी अपनी बात पर अड़े रहे। उन्होंने माफी नहीं मांगी।

गांधीजी की माता भी एक धर्मनिष्ठ और कर्त्तव्यपरायण महिला थीं। भगवान में उनकी अगाध भक्ति थी। वह व्रत, उपवास और देव-दर्शन नियमपूर्वक करती थीं। बालक गांधी पर ऐसे सदाचारी और नेक माता-पिता के उदाहरणों का अच्छा प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। यदि माता-पिता का चरित्र आदर्श हो, तो उनके बच्चों के संस्कार भी अच्छे ही होंगे।

एक कहावत है — होनहार बिरवान के होत चीकने पात। गांधीजी का बचपन भी महान रहा। यह नहीं कि उन्होंने कभी गलतियां नहीं की। पर संस्कार अच्छे होने के कारण ही वे घटनाएं उनके जीवन को सही दिशा में मोड़ने में सफल हुईं। वह बुराई या कुसंग की लपेट में नहीं आए, बल्कि आत्मा की चेतावनी सुनकर पीछे हट गए और उन बुरी बातों से उन्हें हमेशा के लिए नफरत हो गई।

विद्यार्थी जीवन

जब उनके पिता दीवान होकर राजकोट आए, उस समय गांधीजी की उम्र लगभग सात साल की थी । गांधीजी बचपन से ही जरा झेंपू स्वभाव के थे । वह अन्य लड़कों की संगति से कतराते थे । वह नित्य समय पर स्कूल पहुंच जाते और छुट्टी होते ही घर चल देते थे । वह शैतानी से कोसों दूर रहते और अपने शिक्षकों की इज्जत करते थे । उन्हें इस बात का भी विशेष ध्यान रहता था कि कोई ऐसी भूल-चूक न हो जाए, जिससे शिक्षक नाराज हों ।

गांधीजी जब तक हाई स्कूल में थे, एक बार इन्सपेक्टर साहब कक्षा का मुआयना करने आए । उन्होंने विद्यार्थियों को अंग्रेजी के पांच शब्द लिखवाए । उनमें एक शब्द 'केटिल' (kettle) भी था ।

गांधीजी ने उसके हिज्जे गलत लिखे । इस पर शिक्षक ने पैर मारकर इशारा किया कि पास वाले लड़के की कापी से हिज्जे देखकर अपनी गलती सुधार लो ।

गांधीजी भला इस संकेत को कैसे समझते । वह तो समझते थे कि शिक्षक कक्षा में इसलिए चक्कर लगा रहा है कि लड़के एक-दूसरे की नकल न कर सकें । यह बात वह सोच भी न सके कि शिक्षक उन्हें नकल करने और अपनी गलती सुधारने का संकेत कर रहा है ।

गांधीजी को छोड़कर बाकी सब बच्चों के पांचों शब्द सही निकले । बाद में शिक्षक ने उनकी

बेवकूफी बताई। पर गांधीजी को इस बात पर बिल्कुल पछतावा नहीं हुआ। बचपन से ही वह झूठा नाम नहीं चाहते थे। पर इस घटना से शिक्षक के प्रति उनके मन में आदर कम नहीं हुआ, क्योंकि अपने से बड़ों के दोषों की आलोचना न करने का गुण उनमें शुरू से ही था।

उच्च आदर्श

रोज-रोज कोर्स की वे ही पुस्तकें पढ़ते-पढ़ते गांधीजी का मन पढ़ाई से ऊब जाता था। पर शिक्षक के डर से उन्हें वे ही पुराने सबक पढ़ने पड़ते थे। मन लगाकर न पढ़ने से पाठ कच्चा रह जाता था।

एक बार गांधीजी की नजर अपने पिताजी की एक पुस्तक 'पितृभक्त श्रवण' पर पड़ी। उन्होंने बड़े प्रेम से इस पुस्तक को कई बार पढ़ा। उन्हीं दिनों शीशे के बक्सों में तस्वीरें दिखाने वाले भी गलियों में आया करते थे। उसमें गांधीजी ने वे चित्र भी देखे जिनमें पितृभक्त श्रवण कुमार अपने बूढ़े और अंधे मा-बाप को कांवर में बिठाकर तीर्थयात्रा के लिए ले जा रहा था। इस पुस्तक और इन चित्रों का गांधीजी के मन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने मन में श्रवण के समान ही पितृभक्त पुत्र बनने का प्रण किया।

कुछ दिनों बाद नगर में एक नाटक-मंडली आई। वह 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक खेलती थी। गांधीजी इस नाटक को बार-बार देखना चाहते थे। नाटक के दृश्यों में ही गांधीजी का मन रमा रहता। हरिश्चन्द्र के कष्टों को सोच-सोचकर वह कई बार रोए और सत्य पर मर मिटने और अडिग रहने का उनका निश्चय और भी अधिक पक्का होता गया। इस तरह बचपन में ऐसे सुन्दर संस्कार धीरे-धीरे बनते चले गए। उपजाऊ धरती में बीज सहज ही पनप जाता है। इसी तरह संस्कारी बालक में सद्गुण झट जड़ पकड़ लेते हैं।

गांधीजी ने अपनी जीवनी में इन घटनाओं का उल्लेख करते हुए लिखा है: "चाहे आज मेरी बुद्धि कहती है कि हरिश्चन्द्र कोई ऐतिहासिक व्यक्ति न हो, पर मेरे हृदय में तो हरिश्चन्द्र और श्रवण आज भी जीवित हैं। मैं मानता हूं कि आज भी यदि मैं उन नाटकों को पढ़ूं तो आंखों में आंसू आए बिना न रहेंगे।"

शिक्षक उनसे बहुत प्रसन्न रहते थे। गांधीजी ने विद्यार्थी जीवन में कई इनाम और छात्रवृत्तियां भी पाई। पर उन्हें अपनी सफलताओं पर घमण्ड नहीं हुआ। इसके विपरीत, उन्हें इनाम और छात्रवृत्तियां पाने पर आश्चर्य ही होता था।

वह अपने चरित्र का बहुत ही ध्यान रखते थे। उन्हें इस बात का बड़ा ध्यान रहता था कि कहीं कोई ऐसी भूल-चूक न हो जाए कि अध्यापक डांटे।

उन दिनों दोराजी एदलजी गीमी उनके स्कूल में प्रधान शिक्षक थे। वह बच्चों की पढ़ाई और स्वास्थ्य का बड़ा ध्यान रखते थे। इसीलिए उन्होंने ऊंचे दर्जों के विद्यार्थियों के लिए कसरत और क्रिकेट अनिवार्य कर दिए थे। वह नियमपालन के मामले में भी बहुत कड़े थे। गांधीजी संकोची

स्वभाव के तो थे ही, वह भीड़-भाड़ से बचना चाहते थे। उस समय वह समझते थे कि कसरत और पढ़ाई का सम्बन्ध नहीं है। पर बाद में गांधीजी ने अपनी गलती समझ ली। उन्होंने कसरत की कमी खुली हवा में नियमपूर्वक घूम कर पूरी की। इसी से उनका स्वास्थ्य ठीक बना रहा।

व्यायाम में रुचि न लेने का कारण यह भी था कि स्कूल बन्द होते ही वह शाम को जल्दी से जल्दी घर पहुंचकर अपने बीमार पिता की सेवा करना चाहते थे। एक शनिवार को स्कूल सुबह का था। घड़ी नहीं थी, साथ ही आकाश में बादल छाए हुए थे। इस कारण उन्हें समय का पता नहीं चला और उस दिन वह खेल के मैदान में देर से पहुंचे। इस बीच उनकी गैर-हाजिरी लग चुकी थी।

दूसरे दिन गांधीजी ने प्रधान शिक्षक को अपने देर से आने का कारण बताया। पर प्रधान शिक्षक ने विश्वास नहीं किया और दो आने जुर्माना कर दिया। गांधीजी को झूठा समझे जाने के कारण बहुत दुख हुआ। तब से उन्होंने यह बात गांठ बांध ली कि सही बोलने वाले और काम करने वाले को बेपरवाह भी नहीं रहना चाहिए।

बचपन में एक और गलत धारणा गांधी जी के मन में बैठ गई थी। वह यह कि पढ़ाई में सफल रहने के लिए सुलेख की जरूरत नहीं है। उनका यह ख्याल विलायत जाने तक बना रहा। बाद में दूसरों के मोती-से अक्षर देख कर उन्हें अपनी लिखाई पर बड़ा अफसोस होता था। तब उन्होंने समझा कि अक्षरों का खराब होना अधूरी शिक्षा की निशानी है।
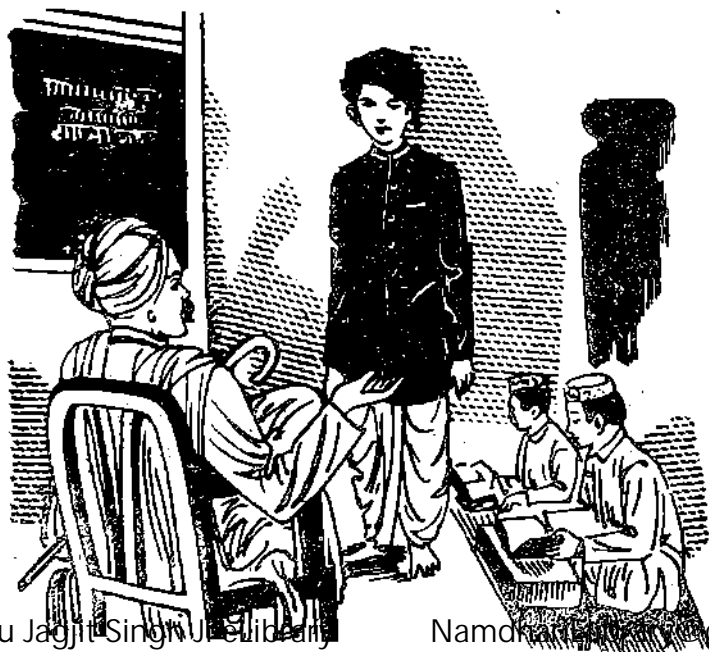
चौथे दर्जे में रेखागणित अंग्रेजी में पढ़ाया जाता था। इससे गांधीजी की समझ में कुछ नहीं आता था। इस पर वह बहुत निराश हो जाते। पर मेहनत वह बराबर करते रहे। आगे चलकर उनकी समझ में यह बात आ गई कि इसमें रटने की नहीं, केवल समझने की जरूरत है। फिर तो रेखागणित उन्हें बहुत सरल और रोचक विषय लगने लगा।

छठी कक्षा में जाकर गांधीजी को संस्कृत बहुत मुश्किल मालूम पड़ने लगी। संस्कृत के पंडितजी जरा सख्त थे। वह बालकों को अधिक से अधिक पढ़ा देना चाहते थे। पर फारसी के मौलवीजी बहुत नरम थे। बस, गांधीजी ने संस्कृत छोड़ देने का इरादा किया। और एक दिन वह फारसी की कक्षा में जाकर बैठ गए।

पंडितजी को इससे बड़ा दुख हुआ। उन्होंने गांधीजी को बुलाकर कहा, "तुम सोचो तो सही कि तुम किसके लड़के हो ! अपनी धार्मिक भाषा नहीं सीखोगे ? अपनी कठिनाई मुझे बताओ। मेरी तो यह इच्छा रहती है कि सब विद्यार्थी शौक से पढ़ें। आगे चल कर इसमें रस ही रस मिलेगा। तुम्हें निराश नहीं होना चाहिए। तुम फिर मेरी कक्षा में आ जाओ।"

पंडितजी का प्रेमपूर्ण उलाहना सुनकर गांधीजी शरमाए। उन्होंने अपनी जीवनी में लिखा है : "आज मेरी आत्मा कृष्णशंकर पंड्या की कृतज्ञ है, क्योंकि जितनी संस्कृत मैंने उस समय पढ़ी थी, यदि उतनी भी न पढ़ी होती, तो आज मैं संस्कृत शास्त्रों का जो रसास्वादन कर पाता हूं, वह न कर पाता, बल्कि अधिक संस्कृत न पढ़ सका, इसका अब पछतावा होता है। आगे चलकर मैंने समझा कि प्रत्येक हिन्दू बालक को संस्कृत अवश्य सीखनी चाहिए।"

गांधीजी का यह विचार था कि भारतवर्ष में ऊंची कक्षाओं में अपनी भाषा के अलावा राष्ट्रभाषा हिन्दी, संस्कृत, फारसी, अरबी और अंग्रेजी को भी स्थान मिलना चाहिए। यदि भाषाएं ढंग से सिखाई जाएं और सब विषय अंग्रेजी द्वारा ही पढ़ने और समझने का बोझ हम पर न हो, तो अनेक भाषाएं सीखना कठिन न होगा, बल्कि उसमें रस आने लगेगा। जो व्यक्ति एक भाषा ठीक ढंग से सीख लेता है, उसे दूसरी भाषा का ज्ञान आसानी से हो जाता है।

विवाह

गांधीजी जब तेरह वर्ष के थे, तभी उनका विवाह हो गया। अपने विवाह का उल्लेख करते हुए वह लिखते हैं : "आज मैं अपने सामने बारह-तेरह वर्ष के बच्चों को देखता हूं और जब मुझे अपने विवाह का स्मरण होता है, तब मुझे अपने ऊपर तरस आता है और उन बच्चों को इस बात के लिए बधाई देने की इच्छा होती है कि वे मेरी जैसी हालत से बच गए। तेरह साल की उम्र में हुए मेरे विवाह के समर्थन में मुझे एक भी नैतिक दलील नहीं सूझती। जब मेरी शादी हुई, मैं हाई स्कूल में ही पढ़ता था। हमारे वर्तमान हिन्दू समाज में एक ओर पढ़ाई और दूसरी ओर शादी, दोनों साथ-साथ चलते हैं।"

अपनी पत्नी के विषय में गांधीजी लिखते हैं : "मेरी पत्नी कस्तूर बाई पढ़ी-लिखी न थी । वह सीधी, स्वतंत्र स्वभाव वाली, मेहनती और कम बोलने वाली स्त्री थी ।"

मांसाहार से कैसे बचे

गांधीजी के तीन भाई और एक बहन थी । गांधीजी तीनों भाइयों से छोटे थे । इनके मंझले भाई का एक दोस्त था । उसमें कई बुरी आदतें थीं । गांधीजी के बड़े भाई, पत्नी और माताजी को यह बात नापसन्द थी कि गांधीजी उसकी संगत करें । पर गांधीजी उसे अपना सच्चा साथी समझते थे और उन्हें पूरा भरोसा था कि वह उसकी बुरी आदतें सुधार सकेंगे ।

आगे चलकर गांधीजी को अपनी गलती मालूम हुई कि सुधार करने के लिए इतनी गहराई में

नहीं जाना चाहिए कि खुद ही भंवर में पड़कर डूबने लगो । मनुष्य अपने मित्र के गुण-दोषों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता । वह दूसरों के दोषों को जल्दी अपना लेता है, जबकि गुण ग्रहण करने में कोशिश करनी पड़ती है ।

जिन दिनों इस मित्र से गांधीजी का साथ हुआ, उन दिनों गुजरात में देश सुधार की लहर ऊंची उठी हुई थी । इस मित्र ने बताया कि हमारा राष्ट्र कमजोर है और इसका कारण यह है कि हम लोग मांस नहीं खाते और मुट्ठी-भर अंग्रेज हम पर शासन करते हैं । वे मांस खाते हैं, इसलिए मजबूत हैं । उसने यह भी दलील दी कि मांस खाने वाले निडर होते हैं । उन्हें किसी का डर नहीं सताता । वे साहस के काम कर सकते हैं ।

सचमुच गांधीजी इस मित्र के मुकाबले में बहुत कमजोर थे । वह खूब दौड़ लेता था, बड़ा निडर

था । गांधीजी बड़े डरपोक थे । वह चोर, भूत और सांप के भय से अंधेरे में जाते डरते थे । उनको [illegible] नींद नहीं आती थी । उनके मन में ऐसी बातों का [illegible] रहता था कि

कहीं इधर से भूत न आ जाए । उधर से चोर न आ दबोचे । कहीं नीचे से अचानक सांप न निकल आए । उन्हें अपने डरने की बात पत्नी से कहते शर्म लगती थी, क्योंकि वह गांधीजी से अधिक साहसी थी और अंधेरे घर में चली जाती थी ।

इस मित्र को गांधीजी की इन कमजोरियों का पता था । वह उनके आगे अपनी निडरता की बढ़-चढ़कर डींग मारता और इस सबका कारण वह मांसाहार साबित करता । उसने गांधीजी को कालेज के कई अध्यापकों, लड़कों तथा शहर के अन्य बड़े-बड़े लोगों के नाम गिनाए जो चोरी-छिपे मांस खाते थे ।

गांधीजी उसकी बातों में आ गए । उनके दिल में यह बात घर कर गई कि यदि हमारे देश के सब लोग मांस खाने लगें, तो देश जल्दी आज़ाद हो जाएगा ।

गांधीजी के माता-पिता पक्के वैष्णव थे । गांधीजी को यह डर बना हुआ था कि यदि उनको अपने पुत्र के मांसाहार की खबर मिली, तो वे जीते-जी मरे के समान हो जाएंगे । पर गांधीजी पर तो उस समय सुधारक बनने की धुन सवार थी । कोई स्वाद के लिए नहीं, बल्कि बलवान बनकर देश को आजादी दिलाने के लिए वह मांस खाना चाहते थे ।

ऐसे नेक इरादे के लिए चुपके से मांस खाने की बात बुरी नहीं है, यह उन्होंने अपने मन को समझा लिया । बस, एक नदी के किनारे मांसाहार का इंतजाम किया गया । साथ के सब लड़के वहां पहुंचे ।

गांधीजी ने अपनी जीवनी में लिखा है, "वहां मैंने पहले-पहल मांस देखा । भटियारे के यहां की डबल रोटी भी लाई गई थी । दोनों में से एक भी चीज मुझे न भाई । मांस चमड़े-सा लग रहा था । खाना असंभव हो गया । मुझे कै आने लगी । खाना बीच में ही छोड़ देना पड़ा । मेरी वह रात बड़ी कठिनाई से कटी । सपने में यह मालूम होता था मानो बकरा मेरे शरीर के भीतर जिन्दा है और 'मैं-मैं' करता है । मैं चौंक-चौंक उठता, पछताता, पर फिर सोचता कि यों हिम्मत नहीं हारनी है । मांसाहार कर्त्तव्य है और मुझे हिम्मत से काम लेना चाहिए ।

गांधीजी का मित्र सहज ही हार मानने वाला नहीं था । उसने किसी बावर्ची से सांठ-गांठ करके राज्य के एक भवन में चुपके से मांस खाने का प्रबन्ध किया । खाना खूब सजाकर लाया गया । गांधीजी वहां के खाने वाले कमरे की सजावट आदि पर रीझ गए ।

इस तरह एक साल बीत गया । इस बीच केवल पांच बार मांसाहार का प्रबन्ध हो सका । एक तो हर बार राज्य के भोजनालय में इसका प्रबन्ध करने की सुविधा नहीं होती थी; दूसरे, गांधीजी के पास तो पैसा था नहीं । इस खर्च का भार मित्र को ही उठाना पड़ता था ।

गांधीजी जब-जब ऐसे भोज में शरीक होते, उन्हें घर पर न खाने के लिए कुछ-न-कुछ बहाना बनाना पड़ता था । जैसे तबीयत अच्छी नहीं, खाना हज़म नहीं हुआ, भूख नहीं । ऐसी ही कोई बात अपनी मां से कहनी पड़ती । इस प्रकार झूठ बोलने से उनकी आत्मा को बहुत कष्ट होता । मन कचोटता रहता । अन्त में गांधीजी ने अपने मित्र से सा[illegible]

मांसाहार करना उचित नहीं है।

कुसंग से कष्ट

माता-पिता से झूठ न बोलने और कपट न करने के शुभ विचार से मांसाहार तो छूट गया, पर उन्होंने इस दुष्ट मित्र का साथ तब भी नहीं छोड़ा। गांधीजी उसी की संगति में रहकर व्यभिचार में फंसते-फंसते बचे। पर जिसकी भगवान में सच्ची निष्ठा होती है, उसकी रक्षा भी हो जाती है। असल में बात यह थी कि यह दुष्ट मित्र गांधीजी को उल्टी-सीधी बातें सुझाकर अपने कब्जे में रखना चाहता था।

चोरी का पछतावा

जब गांधीजी बारह-तेरह वर्ष के थे, तो एक रिश्तेदार की संगति में उन्हें भी सिगरेट पीने और धुआं उड़ाने का शौक हुआ।

घर में गांधीजी के चाचा सिगरेट पिया करते थे। जो टुकड़े वह फेंक देते, उन्हें लड़के इकट्ठा कर लेते। पर ये टुकड़े हमेशा नहीं मिल पाते थे। इसलिए वे सिगरेट खरीदने के लिए नौकरों की जेब के पैसों में से एक-दो पैसे चुराने लगे। पर पैसे हमेशा नहीं मिल पाते थे।

इसी बीच, उन्हें एक पौधे का पता चला जिसका सूखा डंठल सिगरेट की तरह जलाया और पिया जा सकता था। वे उसे सुलगाकर धुआं उड़ाने लगे। पर सन्तोष नहीं हुआ। बड़ों की आज्ञा के बिना कुछ भी नहीं किया जा सकता, अपनी इस पराधीनता पर उन्हें बड़ी झुंझलाहट आती। अन्त में परेशान होकर उन्होंने आत्म-हत्या का निश्चय किया। पर मृत्यु के डर से कुछ कर नहीं सके, और यह तय हुआ कि चलकर रामजी के मन्दिर में दर्शन करें और शान्ति से बैठें तथा आत्महत्या की बात भुला दें।

इसका परिणाम यह हुआ कि जूठी सिगरेट पीने या नौकरों के पैसे चुराकर सिगरेट खरीदने की उनकी आदत छूट गई।

गांधीजी ने एक बार और चोरी की। उस समय उनकी उम्र लगभग 15 वर्ष की रही होगी। यह चोरी गांधीजी और उनके मंझले भाई ने एक कर्ज चुकाने के लिए की थी। भाई ने पच्चीस रुपये के लगभग कर्ज कर लिया था। उनके हाथ में सोने का एक ठोस कड़ा था। उसमें से एक तोला सोना काट कर कर्ज दे दिया गया।

कर्ज तो चुक गया, पर गांधीजी इस चोरी के पश्चाताप से जलने लगे। उन्होंने सारी बातें अपने पिता के आगे कबूलने का फैसला किया। पर डर के मारे कुछ कहने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। उन्हें इस बात का डर था कि पिताजी बहुत बिगड़ेंगे और कड़ी सजा देंगे। शायद वह अपना सिर ही धुन डालें।

गांधीजी ने यह खतरा उठाकर भी अपराध स्वीकार कर आत्मशुद्धि करने का निश्चय किया। उन्होंने सब बातें एक पत्र में लिखीं। अपना कसूर मानकर माफी मांगी और यह प्रार्थना की कि

इसके लिए सन्ताप न करें और प्रतिज्ञा की कि ऐसा काम फिर कभी नहीं करूंगा।

इस घटना का जिक्र करते हुए गांधीजी ने लिखा है, "मैंने कांपते हाथों से यह पत्र पिताजी के हाथों में दिया। मैं उनके तख्त के सामने खड़ा हो गया। वह बीमार थे। इसलिए तख्त पर पड़े रहते थे। उन्होंने पत्र पढ़ा। आंखों से मोती जैसी बूंदें टपकीं। पत्र भीग गया। कुछ देर के लिए उन्होंने आंखें मूंद लीं और पत्र फाड़ डाला। मैं भी रोया। पिताजी की पीड़ा का मैंने अनुभव किया। इन मुक्ता-बिन्दुओं के प्रेमवाण ने मुझे बींध दिया। मैं शुद्ध हो गया। ऐसी शान्तिमय क्षमा पिताजी के स्वभाव के प्रतिकूल थी। मैंने सोचा था, वह गुस्सा होंगे, फटकारेंगे, शायद अपना सिर भी धुन लेंगे, पर उन्होंने असीम शान्ति का परिचय दिया।"

"मैं सोचता हूं, यह सच्चे हृदय से दोष स्वीकार कर लेने का परिणाम था। जो मनुष्य स्वेच्छापूर्वक अपने दोष शुद्ध हृदय से कह देता है और फिर कभी न करने की प्रतिज्ञा करता है, वह शुद्धतम

प्रायश्चित करता है। मैं जानता हूं कि मेरे इस इकरार से पिताजी मेरे सम्बन्ध में निर्भय हो गए और उनका प्रेम मेरे प्रति और भी बढ़ गया।"

धर्म-प्रेम

गांधीजी के पिता बड़े सत्संग प्रेमी थे। उन्होंने अपने बच्चों को सब धर्मों के प्रति आदरभाव बनाए रखने की शिक्षा दी थी। गांधीजी के माता-पिता वैष्णव मन्दिर, शिवालय और राम मन्दिर जाया करते थे। साथ में बच्चों को भी ले जाते थे। घर पर कई जैन साधु भी धर्म-चर्चा करने के

लिए आया करते थे। इनके अलावा, करमचन्द गांधी के कई एक मुसलमान और पारसी मित्र भी थे। ये लोग अपने-अपने धर्म की बातें गांधीजी के पिताजी को सुनाया करते, जिन्हें वह बड़े प्रेम से सुनते। ऐसी चर्चाओं के समय गांधी जी प्रायः अपने पिता के पास ही बैठे होते थे।

इस तरह बचपन से ही उनके मन में सब धर्मों के प्रति सद्भावना बनी। उनके मन में यह बात जड़ पकड़ गई कि सब धर्मों का मूल सचाई की पूजा है। संसार नीति पर टिका हुआ है और नीति सत्य पर निर्भर है। अपकार का बदला भी उपकार ही होना चाहिए। बुराई का बदला भलाई करके

चुकाना चाहिए। यह बात गांधीजी के जीवन का आदर्श और जीवन-सूत्र बन गई।

गांधीजी छुटपन में बहुत डरा करते थे। उनकी दाई रमाबाई ने उन्हें समझाया कि जब डर लगे, राम का नाम जपा करो। बचपन में बोया हुआ यह बीज बाद में अमोघ सिद्ध हुआ।

सबसे अधिक असर गांधीजी पर रामायण के पाठ का पड़ा। उनके पिता राम के मन्दिर में रात को रोज राम-कथा सुनने जाते थे। यहां बालेश्वर के लाधा महाराज बहुत मधुर कंठ से भाव-विभोर हो कथा कहा करते थे। कहते हैं कि उन्हें कोढ़ हो गया था। वह अपने घावों पर केवल महादेव की मूर्ति पर चढ़े बेल-पत्र बांधते और राम नाम जपा करते थे। इसी से वह स्वस्थ हो गए। वह जब रामायण की कथा कहते, तो सुनने वाले झूमने लगते थे। रामायण पर गांधीजी की अगाध भक्ति थी। वह कहते थे, "रामायण पर आज जो मेरा अत्यन्त प्रेम है, उसकी बुनियाद बचपन में रामायण कथा का सुनना ही है। आज मैं तुलसीदासजी की रामायण को भक्ति-मार्ग का सर्वोत्तम ग्रन्थ मानता हूं।"

पिता का स्वर्गवास

गांधीजी के पिता को भगंदर की बीमारी थी। घाव धोना, उसमें दवा-मरहम लगाना और पिता की सेवा करना – यह सब काम गांधीजी के जिम्मे थे। वह रात को नियम से उनके पांव दबाते थे। पिता की सेवा उन्हें बहुत प्रिय थी। जब आखिरी दिनों में उनकी हालत अधिक खराब हो गई, तो पिता की सेवा सुश्रु के लिए आधी रात गांधीजी और आधी रात उनके चाचा जी जागते थे। एक रात गांधीजी को अपने कमरे में गए अभी पांच मिनट ही हुए थे कि नौकर ने आकर दरवाजा

खटखटाया और खबर दी कि उनके पिता चल बसे। वह हड़बड़ा कर पिता के कमरे की ओर भागे।

गांधीजी को आजीवन इस बात की कसक बनी रही कि अन्तिम समय वह अपने पिता के पास नहीं थे।
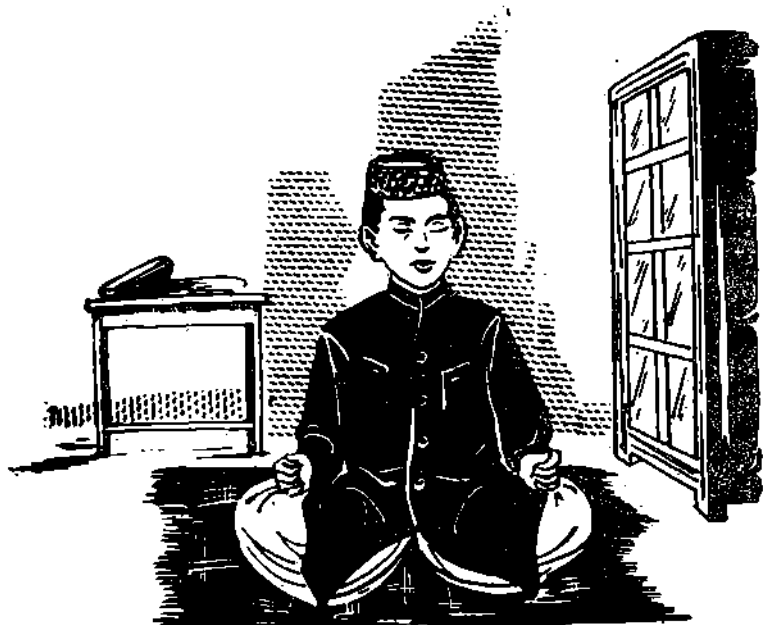
विलायत में पढ़ाई

सन् 1887 में गांधीजी ने मैट्रिक पास किया। परीक्षा देने के लिए उन्हें अहमदाबाद जाना पड़ा था। बड़ों की यह आज्ञा हुई कि मैट्रिक के बाद आगे कालेज में पढ़ना चाहिए। अतएव भावनगर के श्यामलदास कालेज में गांधीजी दाखिल हो गए। यहां की शिक्षा का स्तर काफी ऊंचा था। इसलिए गांधीजी को पढ़ाई मुश्किल लगने लगी। कक्षा में कुछ समझ में न आने के कारण पढ़ाई में रस नहीं आता था। गांधीजी पहला सत्र खत्म करके घर लौटे। भावजी दवे नाम के सज्जन गांधीजी के परिवार के मित्र और सलाहकार थे। वह बड़े व्यवहार - कुशल थे। उन्होंने सलाह दी, "अब समय बदल रहा है। तुम भाइयों में से यदि कोई कबा (करमचन्द) गांधी की गद्दी लेना चाहे, तो यह बिना पढ़ाई के सम्भव नहीं है। मेरी सलाह है कि तुम लोग मोहनदास को बैरिस्टरी के लिए विलायत भेजो।"

गांधीजी तो यही चाहते थे, क्योंकि कालेज की पढ़ाई में उनका मन नहीं लगता था। पर सवाल

यह था कि खर्चे का प्रबन्ध कैसे हो ? माताजी के लिए भी बेटे को विलायत भेजना कठिन था। उन्होंने सुन रखा था कि विलायत जाकर लड़के बिगड़ जाते हैं। मांस और शराब के बिना वहां काम नहीं चलता। गांधीजी ने अपनी माता को इस बात का पूरा भरोसा दिलाया कि वह ऐसी बातों से बचेंगे। एक जैन साधु श्री बेचरजी स्वामी ने भी उनकी माता को समझाया और कहा, "मैं लड़के से इन चीजों के बारे में प्रतिज्ञा करा लूंगा। फिर विलायत जाने देने में कोई हर्ज नहीं।"

इसके बाद गांधीजी ने माता के चरण छूकर मांस, मदिरा और पर-स्त्री से दूर रहने की प्रतिज्ञा

की। तब जाकर उनकी माता ने उन्हें जाने की आज्ञा दी।

जब जात-भाइयों को गांधीजी के विलायत जाने का पता चला, तो बिरादरी में बड़ी खलबली मची। पंचायत जुड़ी। जाति के मुखिया बोले कि पंचों के विचार में विलायत में धर्म-पालन नहीं हो सकता। गांधीजी ने उन्हें बहुतेरा समझाया कि मैं पढ़ाई के लिए विलायत जा रहा हूं और जिन तीन बातों का भय है, उनसे बचने की मैंने प्रतिज्ञा कर ली है।

पर मुखिया ने यह फैसला दिया कि आज से यह लड़का जात-बाहर समझा जाएगा और जो इसकी मदद करेगा, उस पर पंचायत की ओर से सवा रुपया दंड लगेगा।

विदेश के अनुभव

4 सितम्बर, 1888 को गांधीजी बम्बई से विलायत जाने के लिए जहाज पर सवार हुए। जहाज पर गांधीजी के साथ श्री मजूमदार को छोड़कर और सब यात्री अंग्रेज थे। मजूमदार राजकोट के एक वकील थे और बैरिस्टरी पास करने के लिए विलायत जा रहे थे। उन्होंने तो अन्य लोगों से झट हेल-मेल बढ़ा लिया। पर गांधीजी को अंग्रेजी बोलने का अभ्यास नहीं था। इसलिए वह मिलने-जुलने से कतराते थे। झेंप के मारे वह मेज पर सबके साथ बैठकर भोजन करने भी नहीं जाते थे। गांधीजी ने अपने केबिन (कमरे) में ही जो मिठाइयां वगैरह वह घर से साथ लाए थे, उन्हीं से गुजारा किया। मजूमदार उन्हें समझाते कि अंग्रेजी हमारी मातृभाषा नहीं है। अतएव यदि बोलने में भूल हो भी जाए, तो इसमें शरमाने की कोई बात नहीं है।

एक अंग्रेज यात्री ने गांधीजी पर तरस खाकर खुद ही बातचीत छेड़ी। जब उसे यह पता चला कि मांस से उनको परहेज है, तो उसने गांधीजी को यह समझाने की कोशिश की कि विलायत में इतनी अधिक ठंड पड़ती है कि बिना मांस खाए गुजारा नहीं हो सकता।

गांधीजी को विलायत के रहन-सहन या समाज के शिष्टाचार का तनिक भी अनुभव नहीं था। साउथम्पटन बन्दरगाह पहुंच कर वह जहाज से उतरे और ठहरने के लिए विक्टोरिया होटल में पहुंचे।

सितम्बर का महीना था। गांधीजी ने जहाज से उतरते समय सफेद फलालीन का सूट पहन लिया था। ऐसे कपड़ो में वहां अकेले केवल एक वही थे। इससे उन्हें मन में बड़ा संकोच अनुभव हुआ।

तार पाकर गांधी परिवार के एक मित्र डाक्टर मेहता उनसे मिलने आए। उन्होंने यूरोपियन रीति रिवाजों की बहुत-सी बातें गांधीजी को समझाई कि यहां बिना पूछे किसी की चीज नही छूनी चाहिए। किसी से जान-पहचान होते ही उस के बारे में सब कुछ जान लेने को उतावले नहीं हो जाना चाहिए। जोर से नहीं बोलना चाहिए। हिन्दुस्तान में साहबों को जो 'सर' कहने का रिवाज है, उसकी यहां जरूरत नहीं है। 'सर' तो यहां नौकर लोग अपने मालिक को कहते हैं। उन्होंने यह भी समझाया कि होटल में रहना बहुत महंगा पड़ेगा। किसी परिवार के साथ रहना सस्ता पड़ेगा। इससे यहां के सामाजिक जीवन का अनुभव भी आसानी से प्राप्त हो सकेगा।

कुछ दिन बाद डाक्टर मेहता ने अपने एक एंग्लो-इंडियन मित्र के यहां गांधीजी के रहने का प्रबन्ध करवा दिया। इस मित्र ने गांधीजी को परिवार के एक सदस्य की तरह अपने
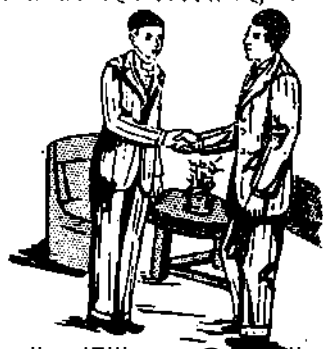
यहां रखा और अंग्रेजी रीति-रिवाज सिखाए और अंग्रेजी में बातचीत करने की आदत डाली।

गांधीजी को वहां और तो सब सुख था, पर भोजन की समस्या बड़ी विकट थी। सुबह जई के दलिए से वह अपना पेट भर लेते थे। उबली हुई साग-भाजी उन्हें अच्छी नहीं लगती थी। इसीलिए दोपहर और शाम को अक्सर भूखे रह जाते थे। वह मांस न खाने की प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहे। मकान मालकिन परेशान थी कि उन्हें क्या खिलाया जाए। सब लोग उन्हें मांसाहार की आवश्यकता और लाभ समझाकर हार गए। पर गांधीजी का एक ही जवाब था, "मैं मांस खाने की उपयोगिता स्वीकार करता हूं। पर अहिंसा के व्रत को मैं नहीं तोड़ सकता, और इसके सम्बन्ध में वाद-विवाद भी नहीं करना चाहता।"

इस जवाब ने मित्रों को चुप तो करा दिया, पर उन्हें यह दुविधा बनी रही कि यदि गांधीजी मांसाहारी नहीं बनेंगे, तो अंग्रेजी समाज में खप नहीं सकेंगे। इधर गांधीजी ने यह निश्चय किया कि वह अंग्रेजी सभ्यता और फैशन अपनाकर सभ्य बनेंगे और इस तरह अंग्रेज़ी समाज में हिल-मिल जाएंगे।

बम्बई के फैशन के सिले कपड़ों से विलायत में गुजारा नहीं हो सकेगा, यह सोचकर गांधीजी ने 'आर्मी और नेवी स्टोर' से नए कपड़े बनवाए। दस पौंड खर्च करके उन्होंने बांड स्ट्रीट से शाम को पहनने के लिए एक खास सूट सिलवाया। घड़ी लगाने के लिए अपने उदार भाई से असली सोने की चैन मंगवाई। टाई बांधनी सीखी। बालों की पट्टियां काढ़ने और मांग निकालने में उनके रोज दस मिनट खराब होते थे। वह टोपी उतारते समय एक हाथ बालों की पट्टियों पर फेरना भी नहीं भूलते थे।

परन्तु इतनी टीप-टाप ही काफी नहीं थी। सभ्य कहलाने के लिए नाच जानना जरूरी था। पढ़े-लिखे कहलाए जाने के लिए फ्रेंच भी सीखनी थी। इसके अलावा, यूरोप का भ्रमण किए बिना विदेश आना अधूरा ही रह जाता। सभ्य पुरुष को लच्छेदार भाषण देना भी आना चाहिए।

गांधीजी तीन महीने की फीस तीन पौंड देकर नाच भी सीखने लग गए। उन्हें ताल का ज्ञान था नहीं, इसलिए वायलिन सीखना आवश्यक समझ तीन पौंड देकर एक वायलिन भी खरीद लिया। उसे बजाना सिखने के लिए भी रकम खर्च करनी पड़ी। फिर भाषण कला सीखने के लिए भी एक जगह शागिर्दी की। वहां भी एक गिन्नी की भेंट चढ़ानी पड़ी।

इस प्रकार काफी रुपया बिगाड़ने के बाद ही गांधीजी की आंख खुली। महापुरुषों की पुस्तकें पढ़कर उन्हें सभ्यता की इन ऊपरी बातों का थोथापन अनुभव हुआ। तब उन्होंने निश्चय किया कि मैं विद्यार्थी हूं। मुझे तो पढ़ाई में मन लगाना चाहिए। अपने सदाचार से मैं सभ्य समझा जा सकूं, तब तो ठीक है। नहीं तो मुझे यह लोभ छोड़ देना चाहिए।

इस प्रकार, तीन महीने में ही सभ्य बनने की इस सनक से गांधीजी ने छुटकारा पा लिया।

सादा जीवन

जिन दिनों गांधीजी पर सभ्य बनने की सनक सवार थी, उन दिनों भी उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि महीने में पन्द्रह पौंड से अधिक खर्च नहीं करूंगा। वह रोज नियम से पाई-पाई का हिसाब लिख लेते थे।

इस सावधानी से बहुत लाभ हुआ। समझ आ जाने पर गांधीजी को केवल नाचगाने आदि का खर्चा बन्द कर देने से ही सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने अपना दूसरा खर्च भी कम करने की कोशिश की। उन्होंने बस और गाड़ी के भाड़े का खर्चा कम करने के लिए पढ़ने की जगह के पास ही एक कमरा ले लिया। इससे समय की बचत भी हुई। वह पढ़ने पैदल ही चले जाते थे। अतएव घूमने जाने के लिए दोबारा समय खर्च नहीं होता था।

इस तरह गांधीजी ने अपना आधा खर्च और काफी समय बचा लिया।

बैरिस्टरी की परीक्षा के लिए अधिक नहीं पढ़ना पड़ता था। इसीलिए गांधीजी ने अंग्रेजी ज्ञान की कमी पूरी करने कि लिए लन्दन की मैट्रिक परीक्षा पास करने का विचार किया। इसमें खर्च कम था। पर अध्ययन काफी करना पड़ता था। इसी बहाने उन्होंने फ्रेंच और लैटिन भाषाओं की भी काफी पढ़ाई कर ली।

गांधीजी को जब अपने परिवार की आर्थिक स्थिति का ख्याल आता, तो उन्हें यह सोचकर कष्ट होता कि वह अपने ऊपर अपनी औकात से अधिक खर्च करके अपने भाई का बोझ बढ़ा रहे हैं। अन्त में उन्होंने और भी सादगी से रहने का निश्चय किया। दो कमरे छोड़कर उन्होंने आठ शिलिंग प्रति सप्ताह के खर्च पर एक कमरा ले लिया। उन्होंने एक स्टोव भी खरीदा। सवेरे का खाना वह खुद ही बना लिया करते थे। दोपहर को कहीं बाहर खा लेते और शाम को कोको बनाकर उसके साथ रोटी खाते।

इस प्रकार, गांधीजी एक या सवा शिलिंग में रोज अपने खाने का काम चलाने लगे। धीरे-धीरे उन्होंने अपने रहन-सहन को परिवार की आर्थिक स्थिति के अनुकूल बना लिया।

इसके बाद गांधीजी शाकाहारियों की एक संस्था के सदस्य बन गए। उन्होंने अपने भोजन सम्बन्धी प्रयोग आरम्भ किए। घर से मंगाई हुई मिठाई और मसालों का उपयोग उन्होंने बन्द कर दिया। चाय और काफी भी छोड़ दी और रोटी, कोको तथा उबली हुई सब्जी पर ही गुजर करने लगे। इन प्रयोगों से गांधीजी इस नतीजे पर पहुंचे कि स्वाद का असली स्थान जीभ नहीं, बल्कि मन है।

गांधीजी ने भिन्न-भिन्न धर्मों के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए अपने दो थियोसोफिस्ट मित्रों से मुलाकात की। उन्होंने गांधीजी को गीता का अध्ययन करने की सलाह दी और कहा कि आप संस्कृत में गीता पढ़ते जाएं और साथ-साथ हम उसका अंग्रेजी अनुवाद पढ़ेंगे।

गांधीजी को बहुत संकोच हुआ, क्योंकि उनको संस्कृत का विशेष ज्ञान नहीं था। गीता के

अध्ययन से गांधीजी के मन पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। वह इस बात को सहर्ष स्वीकार करते थे कि निराश के समय इस ग्रन्थ ने मेरा बहुत ही अच्छा मार्गदर्शन किया।

इन्हीं दिनों शाकाहारी छात्रालय के एक ईसाई सज्जन से गांधीजी की भेंट हुई। उनकी प्रेरणा से

गांधीजी ने बाइबिल पढ़नी शुरू की। तब उन्हें पता चला कि परोपकार और अहिंसा ईसाई धर्म के आधार-स्तम्भ हैं। "जो तेरा कुर्ता मांगे, उसे तू अंगरखा दे डाल। जो तेरे दाहिने गाल पर थप्पड़ मारे, उसके आगे बायां गाल कर दे।" बाइबिल के ये वाक्य पढ़कर गांधीजी को अपार आनन्द हुआ। उन्हें यह भी समझ में आया कि सब धर्मों की अच्छी बातों को अपना लेना चाहिए और सब धर्मों का आदर करना चाहिए।

धर्म पर आस्था ने ही गांधीजी को प्रलोभनों में पड़ने और कुमार्ग पर जाने से बचाया। इस विषय में उनका कहना था, "सच पूछिए तो, यह कहते आनन्द आता है कि मुझे अनेक संकट के अवसरों पर ईश्वर ने बरबस बचा लिया। जब चारों ओर से आशाएं छोड़ देने का अवसर आता है, तब कहीं न कहीं से अचानक सहायता आ पहुंचती है। स्तुति, उपासना, प्रार्थना – यह अंधविश्वास

नही, बल्कि उतनी ही अथवा उससे भी अधिक सच बात है, जितना कि हमारा खाना-पीना।"

वापसी

10 जून, 1891 को गांधीजी बैरिस्टर हुए। 11 जून को ढ़ाई शिलिंग देकर उन्होंने अपना नाम बैरिस्टर के रूप में दर्ज करवाया और 12 जून को हिन्दुस्तान रवाना हो गए। इन दिनों समुद्री तूफान था। जहाज पर अधिकांश यात्रियों का जी मिचलाता था। पर गांधीजी को जहाज के हिलने-डुलने से कोई तकलीफ नहीं होती थी।

कहने को तो उन्होंने बैरिस्टरी पास कर ली थी, पर कानून का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करना अभी बाकी था। बैरिस्टर कहलाना आसान था, पर बैरिस्टरी करना कठिन मालूम हो रहा था। इसी दुविधा में यात्रा का समय कट गया और स्टीमर बम्बई बन्दरगाह पर आ लगा। गांधीजी अपनी मां के दर्शनों के लिए अधीर हो रहे थे। उनके स्वर्गवास के विषय में उन्हें बिल्कुल पता न था। बड़े भाई ने इस विचार से यह समाचार गांधीजी को बम्बई पहुंचने तक न देने का निश्चय किया था कि उन्हें सदमा न पहुंचे।

जब गांधीजी ने मां की मृत्यु का समाचार सुना, तो वह सन्न रह गए। पिताजी की मृत्यु से भी अधिक चोट उन्हें माता की मृत्यु के समाचार से पहुंची। अनेक अरमान दिल में धरे के धरे रह गए। पर वह जी कड़ा करके अपने आंसुओं को पी गए।

गांधीजी कुछ समय तक तो राजकोट में रहकर ही काम-काज करते रहे। पर मित्रों की सलाह से हाईकोर्ट का अनुभव प्राप्त करने के लिए पांच महीने बम्बई भी रहे। पर वहां का खर्च लम्बा था, इसलिए वापस राजकोट आ गए।

उनके भाई साहब की राजकोट में काफी जान-पहचान थी। उस मुलाहिजे से मुवक्किलों की अर्जियां लिखने का काम गांधीजी को मिलता रहा। इस प्रकार हर मास तीन सौ रुपए की आमदनी होने लगी।

इसी बीच, पोरबन्दर के दादा अब्दुल्ला एण्ड कम्पनी का भाई साहब को सन्देश आया कि यदि गांधीजी अफ्रीका में हमारे मुकदमे में हमारी मदद करें, तो उन्हें आने-जाने का किराया और भोजन खर्च के अलावा 105 पौंड दिए जाएंगे।

गांधीजी राजी हो गए। अप्रैल 1893 में वह अफ्रीका को रवाना हो गए।

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार